NJESR/June 2022/ Volume -4/ Issue – 6 E-ISSN-2582-5836

DOI – 10.53571/NJESR.2022.4.6.28-31

विभिन्न दर्शनों के मतानुसार आत्मा का स्वरूप

श्रीमती अनिला बठला

एसोसिएट प्रोफेसर,

श्री लाल नाथ हिन्दू कॉलेज, रोहतक

विभाग – संस्कृत

(Received : 25 May 2022/ Revised : 5 June 2022/ Accepted : 15 June 2022 / Published : 30 June 2022)

जिज्ञासा मानव–मन की मुख्य प्रवृत्ति है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य के मन में पृथक्–पृथक् जिज्ञासाओं की उत्पत्ति हुई। विभिन्न प्रश्न मानव–मन को व्यथित करते रहे। यथा आस्था क्या है? परमात्मा की सत्ता है अथवा नहीं। सृष्टि को चलायमान करने वाला कोई कर्ता है अथवा सृष्टि स्वतः सिद्ध है? मृत्यु के पश्चात् शरीर का क्या होता है? मनुष्य का पुर्नजन्म होता है या नहीं। इन विषयों पर भिन्न–भिन्न विद्वानों ने गहनता से चिन्तन–मनन किया। तदोपरान्त् इस विषय पर अपने निष्कर्ष दिये परन्तु इस विषय पर सभी विद्वान एकमत नही हैं।

उपनिषदों में आत्मा को चरम तत्त्व माना गया है और आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता पर बल दिया गया है–

'तत्त्व मसि' (वही तू है)

'अहं ब्रह्मास्मि'' (मैं ब्रह्म हूँ)

आदि वाक्य आत्मा और ब्रह्मा की एकता पर जोर देते हैं। उपनिषदों के अनुसार जीव और आत्मा में भेद है। उपनिषदों के अनुसार जीव और आत्मा एक ही शरीर में निवास करते है किन्तु आत्मा ज्ञानी है परन्तु जीव अज्ञानी है। जीव कर्म के फलों को भोगता है और सुख–दुःख का अनुभव करता है। इसके विपरीत आत्मा कूटस्थ है। आत्मा का ज्ञान हो जाने पर जीव को दुःख एवं बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। शंकर के अद्वैतवादी दर्शन के अनुसार ''आत्मा स्वयं सिद्ध है। साधारणतः जो वस्तु स्वयं सिद्ध नहीं रहती है, उसे प्रामाणित करने के तर्को की आवश्यक्ता होती है इसलिए आत्मा को प्रामाणित करने के लिए आवश्यकता नहीं यह तो स्वतः सिद्ध है। शंकर ने आत्मा को नित्य, शुद्ध और निराकार माना है और आत्मा का एक ही रूप माना है। न्याय, वैशैषिक, सांख्य, मीमांसा आदि दर्शनों में आत्मा को अनेक माना गया है परन्तु शंकर आत्मा को एक ही मानता है। शंकर के अनुसार आत्मा एक है परन्तु अज्ञान के कारण वह अनेक प्रतीत होती है। जिस प्रकार एक चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल की विभिन्न सतहों पर पड़ने से यह अनेक प्रतीत होता है उसी प्रकार आत्मा का प्रतिबिम्ब ज्ञान के अभाव में अनेक प्रतीत होता है।

चार्वाक दर्शन शरीर से पृथक् आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। साधारणतः भारत का दार्शनिक आत्मा के अमरत्व में विश्वास करता है, परन्तु चार्वाक इस मत के विरूद्ध आवाज उठाता है। चार्वाक का मत है कि आत्मा अमर नहीं है। शरीर के नष्ट होने के पश्चात् आत्मा की स्थिति का भी अन्त हो जाता है। वर्तमान जीवन के अतिरिक्त कोई दूसरा जन्म नहीं है। इस प्रकार चार्वाक भगवद्गीता में आत्मा को अमर माना गया है। आत्मा की अमरता का वर्णन करते हुए गीता में कहा गया है– " यह आत्मा किसी काल में न जन्मता और न करता है– यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है।"[2]

"इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते और इसको आग जला नहीं सकती, इसको पानी भिगा या गला नहीं सकता और वायु सुखा भी नही सकती है।"[3] गीता में अमरता की धारणा पुर्नजन्म की ओर संकेत करती है।

'गीता' के मत के अनुकूल मीमांसा दर्शन भी आत्मा की अमरता में विश्वास करता है। आत्मा की उत्पत्ति और विनाश नहीं होता। आत्मा अनेक है अपने धर्म और अधर्म की भिन्नता के कारण आत्मा को अनेक माना गया है। आत्मा के सुख–दुःख भी इस कारण पृथक्–पृथक् हैं। आत्मा को शरीर से भिन्न कहा गया है क्योंकि आत्मा स्वयं प्रकाशमान है और आत्मा कर्त्ता, भोक्ता और ज्ञाता है। इसके विपरीत शरीर कभी ज्ञाता नहीं हो सकता।

बौद्ध धर्म व जैन धर्म नास्तिक दर्शन है जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखते। चार्वाक दर्शन पुर्नजन्म के सिद्धान्त का भी खण्डन करता है चार्वाक उदाहरणसहित इस तथ्य को उजागर करता है कि जिस प्रकार हम बुढ़ापे में अपनी बाल्यावस्था के अनुभवों का अवश्य स्मरण करते हैं उसी प्रकार आत्मा को भी अतीत जीवन के अनुभवों का अवश्य स्मरण होगा परन्तु ऐसा नहीं होता इसलिए पुर्नजन्म की अवधारण मिथ्या है चार्वाक ने कहा भी है "शरीर के भस्म होने के उपरान्त आत्मा कहाँ से आयेगी?"

न्याय सिद्धान्तमुक्तावली के अनुसार आत्मा को दो प्रकार का माना गया है। परमात्मा और जीवात्मा। परमात्मा सर्वज्ञ है जबकि जीवात्मा प्राणी में पृथक–पृथक है। अमूर्त होने के कारण आत्मा का केवल अनुमान लगाया जा सकता है। इन्द्रियाँ और उसके विषय का आपसी सम्बन्ध यह सिद्ध करता है कि उनका कोई ज्ञाता और भोक्ता अवश्य होना चाहिए।

"करणव्यापारः सकर्तृकः। करणव्यापारत्वात्।

छिदिक्रियायां वास्यादिव्यापारवत्"[5]

अर्थात् इन्द्रियों के व्यापार का कोई कर्ता होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक कारण का कोई कर्त्ता अवश्य होता है जैसे छेदन की क्रिया में परशु।

वास्तव में इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता क्योंकि सृष्टि के प्रत्येक कार्य के पीछे कोई अदृश्य अवश्य विद्यमान है।

कणाद का सूत्र भी लगभग यही तर्क देता है –

"इन्द्रियार्थ प्रसिद्धिरिन्द्रियाथेभ्योऽथन्ति रस्य हेतुः:"[6]

आत्मा की दो परिभाषायें प्रचलित हैं– 'आत्मत्सामान्यवान्'[7] तथा अमूर्तसमवेतद्रव्यत्वा परजातिचत्त्वम्'[8]

इनमें दूसरी परिभाषा के अनुसार आत्मत्व अमर्त–पदार्थ–समवेत है। आकाश, काल, दिशा और आत्मा चारों अमूर्त पदार्थ है किन्तु इनमें से प्रथम तीन तो मात्र एक–एक है। अतः अनकी जाति नही हो सकती। आत्मत्व ही एक जाति हो सकती है। किन्तु आत्मत्व भी सब आत्माओं में नहीं रह सकता क्योंकि आत्मा के भी दो रूप माने गये है– जीवात्मा और परमात्मा परन्तु इसका उत्तर यह कहकर दिया जाता है कि सभी प्रकार की आत्माओं में ज्ञान रहता है। अतएव उनको एक ही जाति में रखा जा सकता है। परन्तु जीवात्मा और परमात्मा एक–दूसरे के बिल्कुल विपरीत है। परमात्मा प्रकाश की भांति सार्वभौम और सर्वज्ञ है जबकि आत्मा का क्षेत्र सीमित है और अल्पज्ञ है। परमात्मा और जीवात्मा में एक स्रष्टा है तो दूसरा स्रष्टा के हाथ का खिलौना। एक सुख–दुःख से परे है तथा दूसरा अज्ञान के फलस्वरूप बन्धन और दुःख का अनुभव करता है। फिर भी दोनों को एक ही जाति के अन्तर्गत रखना उचित प्रतीत नहीं होता।

परमात्मा और जीवात्मा को एक ही जाति में जिस प्रकार रखा गया है उससे कुछ व्यक्तियों ने अनुमान लगाया है कि कणाद और गौतम का आत्मा से अभिप्राय केवल जीवात्मा से था परमात्मा से नहीं इसलिए जो तर्क जीवात्मा को सिद्ध करने के लिये दिये गये है वे परमात्मा पर लागू नहीं होता। कुछ व्यक्तियों का कहना है कि कणाद और गौतम नास्तिक दर्शन में विश्वास रखते थे किन्तु इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि गौतम और कणाद का उद्देश्य दृश्यमान् सृष्टि का वर्णन करना है इसलिए उन्होंने कहीं पर भी परमात्मा का नामतः निर्देश भी नहीं किया। किन्तु बाद के टीकाकारों ने परमात्मा को उसमें जोड़ दिया जिससे भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई। परन्तु यहाँ यह भी विचारणीय तथ्य है कि नैयायिकों ने अन्य जड़ पदार्थों की भांति आत्मा का भी उल्लेख किया है और इस प्रकार जड़ और चेतन में जो मौलिक भेद है उस पर दृष्टिपात नहीं किया।

तर्कदीपिका में ईश्वर की सिद्धि के लिये निम्न तर्क दिया गया है कि परमात्मा न तो प्रत्यक्षगोचर हैं, न बुद्धिगम्य और न उसमें सुख–दुःख की अनुभूति है और न ही अनुमान के द्वारा उसे सिद्ध किया जा सकता है क्योंकि वह ऐसा विषय है जिसके समर्थन में कोई तत्सदृश उदाहरण नहीं दिया जा सकता। दीपिकाकार ने ईश्वर की सिद्धि के लिए निम्न अनुमान दिया है–

"क्षित्यंङः कुरादिंक कर्तृ जन्यं कार्यत्वात्।

यद्यत्कार्य तत्कर्तृजन्यं यथा घटः।।[9]

अर्थात जगत् यदि कार्य है तो उसको चलाने वाला कोई कर्त्ता भी होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक कार्य का कोई कारण होता है द्वितीय, प्रत्येक कार्य का कर्त्ता कोई चेतन होता जड़ नहीं तृतीय, संसार एक कार्य है और इस कार्य का कर्त्ता एक असाधारण सत्ता है।

उदयनाचार्य ने अपनी न्यायकुसुमांजलि में ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिए निम्न तर्क दिये हैं–

"कार्यायोजनघृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।

वाक्यात् संख्या विशेषाच्च साध्या विश्व विदं व्ययः।।[10]

अर्थात् कार्य, आयोजन, धारण पारम्परिक कार्यकुशलता, प्रमाणिकता, श्रुति , उसके वाक्य, संख्या इन कारणों में एक अव्यय सर्वज्ञ सत्ता की स्थिति दृष्टिगोचर होती है।

न्यायदर्शन में जीवात्माएँ अनेक मानी जाती हैं क्योंकि हर किसी व्यक्ति को सुख–दुःख का पृथक्–पृथक् अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त नवजात शिशु में स्तनपान, वृद्धि इत्यादि क्रियायें इतने स्वाभाविक ढंग से होती हैं कि ऐसा तभी सम्भव हो सकता है यदि वह पूर्वजन्म के संस्कार लेकर आया हो। इसलिए पुर्नजन्म का सिद्धान्त भी प्रामाणित होता हैं

सभी नैयायिक ईश्वर की सत्ता में तो विश्वास करते हैं परन्तु उसके स्वरूप के विषय में एकमत नहीं है। कुछ व्यक्ति परमाणुओं को ईश्वर का शरीर मानते हैं कुछ लोग परमाणुओं को आकाश का शरीर मानते हैं, क्योंकि शरीर को भोगायतन माना गया है और भोग अदृष्ट के बिना नहीं होता। एक अन्य मत यह भी है कि ईश्वर का एक तो अपना शरीर है और एक उसका शरीर व जगत् है। एक विचित्र मत यह भी है कि जिस प्रकार भूत–प्रेत किसी मनुष्य–शरीर में प्रवेश कर जाते है, उसी प्रकार ईश्वर भी शरीर को धारण कर लेता है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि बिना शरीर के ईश्वर सृजन कैसे कर सकता है?

दीपिका में आत्मा की परिभाषा सुखाद्याश्रय कहकर दी गई है। नित्यं विज्ञानामानन्दं ब्रह्म– जैसे श्रुति वाक्यों में नव्य नैयायिक आनन्द का अर्थ सुख मानते हैं परन्तु प्राचीन नैयायिक आनन्द का अर्थ केवल दुःखाभाव मानते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सृष्टि में सम्पूर्ण कार्य जिस नियामक ढंग से हो रहे है उसके पीछे परमात्मा रूपी सत्ता का ही हाथ है। सूर्य का उदय अपने निश्चित समय पर होना, सूर्यास्त भी अपने निश्चित समय पर होता है इसी प्रकार से ऋतुएँ अपने निश्चित समय पर आती हैं और चली जाती हैं। आत्मा भी परमात्मा से निश्चित समय पर ही बिलग होती है और निश्चित समय पर आत्मा का परमात्मा में विलय हो जाता है यही सत्य है।

सन्दर्भ सूची –

1. भारतीय दर्शन की रूप रेखा/प्रो० हरेन्द्र सिन्हा, पृ० 58
2. गीता (2/20)
3. गीता (2/13)
4. भारतीय दर्शन की रूप रेखा/प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, पृ० 89
5. न्यायसिद्धान्त मुक्तावली, पृ० 209
6. वैशेषिक सूत्र, 3, 1.2.2
7. तर्क कौमुदी, पृ० 3
8. सर्वदर्शन संग्रह, पृ० 104
9. भारतीय दर्शन की रूप रेखा/प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, पृ० 51